एससी-एसटी एक्ट, अपने गिरेबां में झांकने का वक्त!

- धीरेश सैनी

देश के विभिन्न हिस्सों में कल 2 अप्रैल को भारत बंद के आह्वान के साथ दलितों और सामाजिक न्याय में यक़ीन रखने वाले दूसरे लोगों के प्रदर्शन के बाद एक प्रश्न सुप्रीम कोर्ट की अवमानना को लेकर खड़ा किया जा रहा है। इस बंद का मुद्दा चूंकि एससी-एसटी एक्ट (scheduled Caste and Scheduled Tribe (Prevention of Atrocities) Act, 1989) में सुप्रीम कोर्ट की गाइडलाइंस थीं तो इस तरह का प्रश्न स्वाभाविक है। एक सवाल हिंसा को लेकर है। इन दोनों सवालों के बरअक्स एक सवाल यह है कि कौन सी ताकत है जो देश में खुलेआम कोर्ट व संविधान की धज्जियां उड़ाती है, हिंसा के खुले खेल खेलती है और लगातार अराजकता व उपद्रव का माहौल बनाए रखती है।

जिन लोगों को एकाएक संविधान और सुप्रीम कोर्ट की पवित्रता का ख़याल आ रहा है, उनकी अतीत व वर्तमान की कारगुजारियों पर एक नज़र डालना जरूरी है। देश के एक हाई प्रोफाइल संत श्रीश्री रविशंकर ने हाल ही में कहा था कि अयोध्या विवाद नहीं सुलझा तो देश सीरिया में बदल जाएगा। साथ में इस विवाद को सुलझाने का एकतरफा फैसला भी उन्होंने दिया था कि मुसलमान इस धार्मिक स्थल पर अपना दावा छोड़ दें। उन्होंने कहा था कि अदालत के फैसले से कोई एक पक्ष अपनी हार महसूस करेगा और बाद में बवाल होगा। अदालत में लंबित इतने संवेदनशील मसले पर एकतरफा रास्ता बताकर देश के सीरिया में बदल जाने की बात को मीडिया, सरकार और कोर्ट ने न धमकी माना और न कोर्ट की अवमानना।

ऐसा न होना, कोई हैरानी की बात भी नहीं थी। मंडल आयोग के सहारे पिछड़ों के सामाजिक-राजनीतिक उभार के दिनों में संघ परिवार ने अयोध्या मसले पर तूफान खड़ा कर दिया था। तब से लेकर आज तक संघ परिवार के नेताओं के जिनमें भारतीय जनता पार्टी के वे नेता भी शामिल हैं जो संवैधानिक सरकारों में शामिल रहे हैं, के बयानों के सलसिले को भी देखिए। संघ परिवार ने हमेशा इस मसले को आस्था का सवाल कहकर अदालत से ऊपर कहा। बाबरी मस्जिद विध्वंस को याद कीजिए, यूपी के तत्कालीन मुख्यमंत्री स्वयंसेवक कल्याण सिंह की सरकार की तरफ से दिए गए हलफनामे को याद कीजिए, लंबे खूनी अभियानों के बाद बाबरी मस्जिद गिराने में शामिल संघ और भाजपा के नेताओं के चेहरों को याद कीजिए और संविधान और कोर्ट की पवित्रता में उनके विश्वास का आकलन कीजिए।

अफसोस की बात यह है कि केंद्र में व अधिकांश राज्यों में सरकारें आने और देश में अपराजेय सी शक्ति जैसी छवि बन जाने के बाद संघ परिवार के ऐसे अभियानों में और तेजी आई है जो यह संदेश देते हैं कि वह देश के संविधान से ऊपर की चीज है। भाजपा सरकार के कामकाज में भी लगातार संविधान के घोषित-अघोषित मूल्यों की उपेक्षा होती रही है। सुप्रीम कोर्ट के आदेश का खुलेआम मखौल बनाने की बाकायदा मुहिम चलाए जाने का उदाहरण तो दीवाली के मौके पर भी देखने का मिला। संघ परिवार से जुड़े संगठनों के आम कार्यकर्ताओं के फेसबुक और वॉट्सएप संदेशों की बात जाने दीजिए, जिम्मेदार संवैधानिक पदों पर बैठे कई जनप्रतिनिधियों तक ने सार्वजनिक रूप से इस आदेश पर सवाल खड़ा करने वाली बातें कीं।

भगवा गमछे पहने लोगों ने खुद को क्आजाद हिंद फौज का कार्यकर्ता बताकर सुप्रीम कोर्ट के सामने ही पटाखे चलाए और दावा किया कि पटाखों की बिक्री पर रोक है, चलाने पर नहीं। न इसे कोर्ट की अवमानना बताया गया और न संविधान की पवित्रता पर आंच की आशंका जताई गई। वजहें साफ थीं। एक तो सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश के बहाने भी हिंदुओं में उन्माद पैदा करने का मौका हाथ लग गया था। दूसरे देश की दूसरे संवैधानिक इदारों की तरह सुप्रीम कोर्ट को भी खुला संदेश दिया जा रहा था। संवैधानिक संस्थाओं के प्रति देश के नागरिकों के विश्वास को भी ठेस पहुंचाई जा रही थी ताकि वे बिना कोई चू-चपड़ किए उनके रहमोकरम पर जीना सीख लें।

अब जरा उन अधिकतर क्और राजनीतिक लोगों-पत्रकारों आदि की फेसबुक दीवारों को पीछे की तरफ स्क्रॉल कीजिए जो एकाएक सुप्रीम कोर्ट की अवमानना को लेकर चिंतित हो रहे हैं। आप उन्हें संवैधानिक मूल्यों पर खुलेआम हमलों के मामलों में या तो चुप पाएंगे या हमलावरों की जुबान बोलते हुए।

दलितों के आक्रोश का अनुमान नहीं था तो आप शुतुरमुर्ग हैं, या फिर दंगा फैलाने की अपनी ताकत का इतना गुमान है कि आपने इस तरफ ध्यान नहीं दिया!

दरअसल मायावती को उतर-प्रदेश के चुनाव में सीट नहीं मिलने के बाद और रामविलास, उदितराज और आठवले को खरीदकर आपको लगा कि आपने दलित आन्दोलन को निगल लिया है आपके आसपास के लग्गू-भग्गू और करीबी intelligent-sia भी आपको यही विश्वास दिलाती रही। तकनीकी बातों में मत उलझाइए। ये कहने का कोई मतलब नहीं है कि आन्दोलनकारी सुप्रीम कोर्ट के ऑब्जरवेशन का सही मतलब समझकर निकले थे या नहीं। यह गुस्सा एक दिन का नहीं है। आखिर किस ठिठाई से और किसकी शह आर केन्द्रीय मंत्री अनंत कुमार हेगड़े संविधान बदलने की बात करता है। किसकी शह पर वह दलितों के लिए अपमानजनक भाषा बोलता है। अनंत कुमार हेगड़े आज भी केन्द्रीय मंत्री है। उसपर कोई कार्रवाई नहीं हुई।

किसकी शह पर उतर-प्रदेश का मुख्यमंत्री अजय सिंह विष्ट दलित नेता चन्द्रशेखर को जमानत मिलने के बाद जेल में रखने का हौसला दिखाता है? किसकी शह पर चंदशेखर पर राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून की धारा लगाता है? किसकी शह पर यह हो रहा है कि हत्यारे बर्बर शम्भुलाल रैगर की शोभायात्रा निकलती है और एक दलित युवक को घोड़ी आर चढ़ने के लिए मुँह कुचल कर मार दिया जाता है। किसकी शह पर चंदशेखर पर राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून की धारा लगाता है? बंद के दौरान हिंसा हुई है और लोगों की जानें गई हैं क्योंकि प्रशासन और सरकार को इस गुस्से का अंदाज नहीं था। यह पूरी तरह से प्रशासनिक असफलता है।

आज हिंदुत्व के नकली रंग में रंगे सवर्ण हिंदुत्ववादी सियारों के रंग उतरने का दिन है।

सवर्णों, अभी भी चेत जाइए। कल तक आपको लग रहा था कि आपके पास बहुसंख्यकों की ताकत है और मुसलमान अल्पसंख्यक हैं। एक ही दिन में आपको अपने अल्पसंख्यक होने का अहसास हो गया और क़ानून के शासन की याद आने लगी?

लगेगी आग तो आएँगे घर कई ज़द में
यहाँ पे सिर्फ़ हमारा मकान थोड़ी है

यह बताने का मकसद हरगिज यह साबित करना नहीं है कि सुप्रीम कोर्ट के किसी आदेश या संशोधन को लेकर असहमति जताने का रास्ता सिर्फ सड़कों पर झंडे-डंडे लेकर निकल पड़ना है। लेकिन, यह बताना मकसद जरूर है कि संवैधानिक संस्थाओं को बेमानी करने, लोकतांत्रिक रास्तों को संदिग्ध बनाने, कमजोर तबकों को असहाय महसूस कराने के खेल निरंतर बड़े पैमाने पर खेले जा रहे हैं और कथित पढ़ा-लिखा वर्ग भी इसमें शामिल है।

ऐसे माहौल में यह समझना होगा कि दलितों के बिना किसी बड़े राजनीतिक दल के आह्वान के इस तरह सड़कों पर निकल आने की वजह सिर्फ एससी-एसटी एक्ट को लेकर सुप्रीम कोर्ट की गाइडलाइंस नहीं थीं। गुजरात से लेकर यूपी तक, एमपी से लेकर हरियाणा तक और देश के विभिन्न हिस्सों में बस्तियों से लेकर शिक्षा संस्थानों तक दलितों में अपने अधिकारों के हनन और अत्याचार की घटनाओं पर सरकारों के रुख को लेकर भारी निराशा और बेचैनी मौजूद थी।

जहां तक सुप्रीम कोर्ट की गाइडलाइंस का प्रश्न है तो संविधान विशेषज्ञों का एक मत यह भी है कि जिस मामले में स्पष्ट रूल मौजूद हो, उसमें गाइडलाइंस देना सीमाओं का अतिक्रमण है। एनडीटीवी पर रवीश कुमार से बातचीत में संविधान विशेषज्ञ फ़ैज़ान मुस्तफ़ा ने इस बारे में विस्तार से रोशनी भी डाली और कहा कि केंद्र सरकार का घोषित रुख भी यही है। दलितों और स्त्रियों दोनों की गरिमा की रक्षा के लिए बने कानूनों के दुरुपयोग के आरोपों के बावजूद तल्ख सचाई यह है कि इन सर्वाधिक वंचित तबकों के लिए न्याय पाना टेढ़ी खीर रहा है। दोनों ही मामलों में कोर्ट की आपत्तिजनक टिप्पणियां और निराशाजनक फैसले भी मौजूद हैं। ऐसे में संविधान विशेषज्ञ भी मानते हैं कि दलित और स्त्री उत्पीड़न के मसलों में तत्काल एफआईआर दर्ज न किए जाने का प्रावधान निराशा को बढ़ाने वाली बात है।

लेकिन, फिर वही सवाल है कि क्या लोकतंत्र में किसी असहमति या विरोध के लिए हिंसक-उग्र प्रदर्शन जायज हैं। 2 अप्रैल के बंद के दौरान हुई व्यापक हिंसा और आगजनी के बाद यह सवाल दलितों से पूछा जा रहा है। बेशक, कोई भी हिंसा या उपद्रव किसी भी तर्क से उचित नहीं है। इसमें भी कोई शक नहीं होना चाहिए कि लोकतंत्र में लोकतांत्रिक संस्थाओं को संविधान के अनुकूल आचरण करना चाहिए और ताकतवर तबकों का नहीं बल्कि वंचितों व अल्पमत वाले तबकों के विश्वास को सुनिश्चित रखना चाहिए। अब जरा देश के हिंसक आंदोलनों और उपद्रवों के इतिहास को देखें तो हम पाएंगे कि ताकतवर तबकों ने जब चाहा, तब लोकतंत्र को रेल की पटरियों और सड़कों की तरह जाम कर दिया और जब चाहा ट्रैफिक को बहाल कर दिया। दलितों-अल्पसंख्यकों की बस्तियां फूंकने वालों, दलितों के वोटों पर डाका डालने वालों, छूआछूत करने वालों, हत्यारों और बलात्कारियों तक की हिमायत में लामबंदी की गई।

आरक्षण विरोध के नाम पर सड़कों और अस्पतालों को ठप कर दिया गया। सरकारों ने उन्हें संरक्षण दिया और मीडिया ने उनके कसीदे काढ़े। यहां तक कि हम ऐसे दौर में चले आए जहां सत्ताधारी पार्टी के सहयोगी संगठनों के लोग खुलेआम हत्याओं के आह्वान करते हों, तलवारें लहराते हुए दंगे कराते घूमते हों, संवैधानिक पदों पर बैठे लोग आततायियों के हौसला बढ़ाने वाले बयान देते हों और सोशल मीडिया से लेकर सार्वजनिक चौराहों तक पर अश्लील व हिंसक आह्वान किए जाते हों। तो क्या यह सवाल नहीं बनता है कि ये कौन लोग हैं जो अराजकता और उपद्रव पर ही फल-फूल रहे हैं और हिंसा व दंगों की आड़ में जनता के लोकतांत्रिक आधिकारों का हनन किए जाते हों और देशी-विदेशी कॉरपोरेट को सींचते हों?

तो क्या ऐसे तत्व वाकई 2 अप्रैल को हुए उपद्रव को लेकर चिंतित हैं या इस उपद्रव में उनकी भी कोई भूमिका थी? प्रदर्शनकारी भीड़ों का चरित्र अमूमन मर्दवादी रहता आया है। दलितों की भीड़ का चरित्र ऐसा नहीं रहा होगा, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। लेकिन, यह भी गौरतलब है कि अनेक जगहों पर प्रदर्शन शांतिपूर्ण भी रहे और सामाजिक न्याय के सवालों पर लिगेसी रखने वाले लोग भी इनमें शामिल हुए। कुछ सवालों में एक सवाल यह है जो भाजपा समर्थक और विरोधी दोनों ही अपनी-अपनी जगह से पेश कर रहे हैं कि सबसे ज्यादा हिंसा भाजपा शासित राज्यों में ही क्यों हुई। भाजपा समर्थित लोगों का मानना है कि भाजपा सरकारों को परेशानी में डालने और बदनाम करने के लिए हिंसा पूर्व नियोजित थी। लेकिन, सोशल मीडिया पर ऐसे लोगों के इस सवाल के साथ लगे दुमछल्लों और उनकी दूसरी पोस्ट्स को देखें तो दलितों के प्रति उनकी हिकारत भी छलकती मिलती है।

भाजपा विरोधी लोग इसी सवाल को पेश करते हुए तर्क दे रहे हैं कि भाजपा शासित राज्यों में बंद और प्रदर्शन के मद्देनजर जरूरी इंतजामात नहीं किए गए थे। स्थिति को बिगड़ने दिया गया, दमन किया गया और फायरिंग खोल दी गई। इन लोगों का कहना है कि हाल-फिलहाल में ही रामनवमी के जुलूसों और कई दूसरे मामलों में उपद्रवियों पर पुलिस ने फायरिंग या बल-प्रयोग न करने के लिए यह तर्क दिया कि इससे लोगों की जान की ज्यादा क्षति होती। बंद समर्थक प्रदर्शनकारियों से टकराव करने वाले कहीं कुछ सवर्ण संगठनों और कहीं बजरंग दल आदि के कार्यकर्ताओं को भी संरक्षण के आरोप लगाए जा रहे हैं। सवाल यह भी उठाए जा रहे हैं कि हिंसा व उपद्रव में दलितों की जानें गईं और उन्हें ही हिंसा के लिए जिम्मेदार ठहराया जा रहा है लेकिन सवर्ण संगठनों और बजरंग दल कार्यकर्ताओं के हिंसक टकराव में शामिल होने पर मीडिया चुप्पी साध गया है।

आंदोलन समर्थक लोग ऐसी कुछ तस्वीरें भी सोशल मीडिया पर वायरल कर रहे हैं। कुछ और सवाल भी चर्चाओं में हैं। मसलन, आरएसएस के एक पदाधिकारी ने इस बात पर हैरानी जताई है कि संघ को दलित विरोधी बताया जा रहा है और कहा है कि संघ का इस प्रकरण से कोई लेना-देना है। दलित व ओबीसी बुद्धिजीवियों की फेसबुक दीवारों पर यह सवाल उठ रहा है कि दलितों के बंद के विरोध में बजरंग दल कार्यकर्ताओं को दिक्कत क्यों महसूस हुई। सोशल मीडिया पर एक पाठ इस पूरे मामले को दलितों के निर्णायक उभार के रूप में देखने का भी है। लेकिन, इस पूरे प्रकरण से दलितों को लेकर ही कई चिंताएं और आशंकाएं सामने हैं। जब भी उन्होंने अन्याय का सामूहिक प्रतिरोध किया, उन्हें भयानक प्रतिहिंसा झेलनी पड़ी है। लोकतंत्र के संकट के साथ दूसरे वंचित तबकों की तरह उनकी असुरक्षा बढ़ रही है और उनका गुस्सा व निराशा भी। सवाल यह है कि लोकतंत्र से जुड़े दलितों के सवाल और दूसरे सामाजिक न्याय के संघर्षों की रणनीति क्या होनी चाहिए।

दलित एक्ट को लेकर ग़लतफ़हमी क्यों?

विजय शंकर सिंह, पूर्व पुलिस अधिकारी

सुप्रीम कोर्ट ने जिस तरह से दलित एक्ट के बारे में गाइड लाइन जारी की है वह बड़ी अटपटी ओर भ्रम अधिक फैलाने वाली हैं, जो बातें पहले से स्पष्ट है उसे फिर से रिपीट किया गया है, ओर केंद्र की भाजपा सरकार ने इस निर्णय के संबंध में पुनर्विचार याचिका दायर कर मामले को ऐसा बना दिया है जिससे शक पैदा होता हैं कि जरूर कोई गलत बात हुई है।

हिंसा की घटनाओं पर छत्तीसगढ़ सर्व आदिवासी समाज के अध्यक्ष ने युवाओं की एक चर्चा में कहा कि, विरोध प्रदर्शन से पहले एक एक व्यक्ति को अपनी समझ से एक लिस्ट बनानी चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट के फैसले में कौन सी लाइन हटाने और एक्ट को कठोर/ प्रभावी बनाने के लिए कौन से नए प्रावधान जोड़ने चाहिए? ठोस कार्यनीति बनाने की ओर बढ़ें। जोश में हवाई बातें/काम करने से समाज का हित नहीं।

सुप्रीम कोर्ट के एससी एसटी एक्ट के फैसले पर पक्ष और विपक्ष अपने अपने मन से राजनीतिक दांव खेल रहा है।

गिरफ्तारी विवेचना का एक अंग है। गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती यह पुलिस का विधि प्रदत्त अधिकार है जो उसे दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्राप्त है। जन मानस में यह धारणा बैठ गयी है कि उधर उन्होंने थाने में मुक़दमा लिखवाया नहीं कि दरोगा जी ने मुल्ज़िम को हवालात की राह दिखाई। लेकिन कानून ऐसा नहीं कहता है।

मुक़दमा लिखाने या एफआईआर दर्ज कराने के बाद उस मामले की विवेचना शुरू होती है और सुबूत आदि एकत्र किये जाते हैं। गिरफ्तारी भी उसी विवेचना का एक अंग है। तत्काल गिरफ्तारी हो, पहले गिरफ्तारी हो, आदि आदि बातें प्रशासनिक आवश्यकता के कारण भले होती हैं पर कानून में यह कहीं नहीं लिखा है कि मुक़दमा लिखाते ही मुल्ज़िम जो धर पकड़ लिया जाय।

गिरफ्तारी के बारे में सुप्रीम कोर्ट का ही यह मंतव्य भी पढ़ लिया जाय जो इसी फैसले में दिया गया है। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार,

" While registration of FIR is mandatory, arrest of the accused immediately on registration of FIR is not at all mandatory. In fact, registration of FIR and arrest of an accused person are two entirely different concepts under the law, and there are several safeguards available against arrest.Moreover, it is also pertinent to mention that an accused person also has a right to apply for "anticipatory bail" under the provisions of Section yx} of the Code if the conditions mentioned therein are satisfied. Thus, in appropriate cases, he can avoid the arrest under that. "

अब अदालत के फैसले के इस अंश को भी पढिये- " We are of the view that cases under the Atrocities Act also fall in e&ceptional category where preliminary inquiry must be held. Such inquiry must be time-bound and should not e&ceed seven days in view of directions in Lalita Kumari (supra)."

इसके बारे में कहना है कि,

पहके प्राथमिक जांच की जाय फिर के बाद ही एफआईआर दर्ज होने के निर्णय का तो बहुत ही दुरुपयोग होगा। असरदार लोगों के खिलाफ तो एफआईआर ही दर्ज नहीं हो पाएगी। फिर प्राथमिक जांच जिस प्रार्थना पत्र पर शुरू होगी कानून के अनुसार वही प्रथम सूचना हो जाएगी । फिर प्राथमिक जांच का एक प्रावधान इस एक्ट के और दुरुपयोग को भी बढ़ाएगा, और साथ ही साथ इस एक्ट के जो सच मे भुक्तभोगी होंगे वे और पीडि़त होंगे।

दो कानूनों का दुरुपयोग बहुत हुआ है। एक तो दहेज निषेध अधिनियम और 498 आईपीसी का और दूसरा एससीएसटी एक्ट का। एससीएसटी एक्ट का दुरूपयोग सवर्ण जाति के लोगों ने दलितों को सामने कर के अपनी दुश्मनी साधने के लिये भी कम नहीं किया है। यह एक्ट जब बना था तभी यह प्राविधान रखा गया था कि इस अभियोग की विवेचना डीएसपी स्तर का अधिकारी करेगा। डीएसपी स्तर के अधिकारी को विवेचक बनाने के पीछे दो तर्क थे, एक तो विवेचना गंभीरता से होगी क्यों कि थाने के विवेचक के पास काम बहुत होता था, और डीएसपी स्तर का अधिकारी मामले की वास्तविकता को तह में जा कर बिना किसी दबाव के इसे निपटाएंगे।

हमने खुद कई विवेचनायें की हैं और दुरूपयोग की बात भी कुछ विवेचनाओं में मिली है।मैंने अपने सेवाकाल के दौरान ऐसे भी उदाहरण पाये हैं जब विपक्षी को केवल फंसाने की नीयत से उसके परिवार के किसी प्रतिभावान छात्र को या जिसे कोई नौकरी मिली हो उसे संकट में डालने के लिये मुल्ज़िम के रूप में उनके नाम लिखा दिये गये हों। दुरूपयोग रोकने के लिये ही ऐसी विवेचनाओं में सभी तथ्यों की पड़ताल की जाती है और यह भी देखा जाता है कि एक्ट की मंशा कि जातिगत आधार पर उत्पीड़न हुआ है या नहीं अथवा जाति के आड़ में यह दुश्मनी साधने का खेल है। जब सुबूत मिल जाते हैं तभी गिरफ्तारी होती है। कभी कभी सुबूत घटनास्थल पर जाते ही मिल जाते हैं तो तुरंत गिरफ्तारी भी हो जाती थी।

सुप्रीम कोर्ट ने गिरफ्तारी के बारे में एक और अहम फैसला पहले दिया था। उसके अनुसार सात साल से कम सज़ा के मामले में गिरफ्तारी न हो। यह फैसला सुनने में तो बहुत ठीक लगेगा पर व्यवहारिक रूप से इस से अपराध नियंत्रण में इससे दिक्कतें आएंगी। एससीएसटी एक्ट में भी सुप्रीम कोर्ट को गिरफ्तारी पर किसी भी नए निर्देश की ज़रूरत नहीं थी। यह फैसला भी मेरी समझ मे बिना किसी ज़रूरत के ही दे दिया गया है। गिरफ्तारी कब हो, किसकी हो, क्यों हो, क्यो न हो, यह काम पुलिस के विवेचक का है । अगर विवेचक गलती करता है तो उसके खिलाफ कार्यवाही करने के लिये वरिष्ठ अधिकारियों का तंत्र है। खुद एक्ट में ही यह प्राविधान है कि विवेचक के खिलाफ भी इसी एक्ट की धाराएं लगायी जा सकती हैं।

सरकार ने राज्य स्तर पर विशेष जांच विभाग, जिला स्तर पर विशेष जांच, राज्य और केंद्र के अनुसूचित जाति जनजाति आयोग के गठन कर रखे हैं। यह सब विभाग इस एक्ट के दुरुपयोग होने और एक्ट को नज़रअंदाज़ करने पर कार्यवाही कर सकते हैं और करते भी हैं। लेकिन महज़ दुरुपयोग के आरोपों के आधार पर कोई कानून न तो रद्द हो सकता है और न ही उसे शिथिल किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के इस निर्णय में कि तत्काल गिरफ्तारी न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है कि शोर मचाया जाय। कोई भी सरकार या अदालत यह कैसे कह सकती है कि तुरन्त गिरफ्तारी की जाय। तुरन्त गिरफ्तारी जैसा शब्द केवल धारा 151 सीआरपीसी जो शान्ति भंग की आशंका में होती है, की जाती है।

मुकदमों में गिरफ्तारी जब भी होगी विवेचना के दौरान जो सुबूत मिलेंगे उसी के आधार पर होगी और होनी चाहिये। बिना सुबूतों की गिरफ्तारी पर अदालतें नाराज़गी भी ज़ाहिर करती हैं और विवेचक बहुधा दण्डित भी होते हैं। कानून का पालन कानून के अनुसार ही होना चाहिये। चाहे एससीएसटी एक्ट हो या कोई भी अधिनियम, यह पुलिस के विवेचक को ही तय करना है कि वह कब, किसे, कहाँ और क्यों गिरफ्तार करे पर गिरफ्तारी का यह फैसला भी उसे सुबूतों के ही आधार पर करना है न कि स्वेच्छाचारी तरीके से ।